स्मृतियों में रूस

शिखा वार्ष्णेय

स्मृतियों में रूस

शिखा वार्ष्णेय

अपनी बात

सोवियत संघ को बेशक आज हम यूएसएसआर कहते हैं पर हम भारतीय लोगों के लिए आज भी यह सीधा सरल रूस ही है। कल तक अमेरिका के साथ 'महाशक्ति' नाम बांटने वाला यह देश बहुत कुछ परियों के देश जैसा है। उस समय हम बच्चे हिंदी अंग्रेजी की पत्रिकाओं और कहानियों के अलावा रूसी किताबें ज्यादा पसंद करते थे। पुस्तक मेलों में सुंदर कवर में सजी पुस्तकें, जिन्हें हाथ में लेने भर से अप्रतिम सुख की एक अनुभूति-सी हुआ करती थी, उनमें वर्णित जादू की कहानियां, खूबसूरत चित्र, रूसी गुड़िया सचमुच किसी परीलोक की कहानियां लगा करती थीं। उस समय शायद हमें हिंदी साहित्यकारों के इतने नाम नहीं याद हुआ करते थे जितने रूसी साहित्यकारों के। गोर्की, चेखव और टाल्स्टॉय जैसे कहानीकार हर बालक के दिल में बसते थे। यह वह दौर था जब हर भारतीय युवक शायद एक रूसी परी के सपने देखा करता था और हर कोई कम से कम एक बार उस परीलोक की सैर करना चाहता था। वही रूसियों पर भी हम हिंदुस्तानियों का कम प्रभाव नहीं था। राजकपूर सरीखे लोगों ने जैसे रूस में भी हिंदुस्तानी संस्कृति घोल कर रख दी थी। हमारी फिल्मों के काल्पनिक लम्हें उन्हें अपने कठिन और व्यस्त जीवन में कुछ पल सुकून का दिया करते थे। इसे हम राजकपूर पर फिल्माए गए इस गीत से अच्छी तरह समझ सकते हैं-मेरा जूता है जापानी, मेरी पतलून इंगलिस्तानी फिर भी दिल है हिंदुस्तान...।

यह वह समय था जब भारत-रूस की दोस्ती अपने चरम पर थी। गोर्वाचोव और राजीव गांधी दोनों देशों के बीच एक सेतु का कार्य कर रहे थे। दोनों देशों में बहुत से सांस्कृतिक राजनैतिक और शिक्षाप्रद कार्यक्रमों के आदान-प्रदान की परियोजनाएं चल रही थीं और ऐसे ही एक कार्यक्रम के अंतर्गत मुझे भी अपना पांच वर्षीय परास्नातक पाठ्यक्रम रूस में करने का अवसर मिला था।

इस अवधि के दौरान इस अनोखे देश में बहुत से आश्चर्यजनक अनुभव हुए। एक नई संस्कृति और समाज के अलावा जीवन को बहुत करीब से जानने का अवसर मिला। नए दृष्टिकोण और नई परिस्थितियों से गुजरकर जीवन के कई रंगों से रूबरू होने का मौका भी मिला जिन्हें पूरी तरह शब्दों में ढालना तो संभव नहीं, परंतु उन अनमोल पलों को सहेजकर इस पुस्तक के माध्यम से आपके सामने प्रस्तुत करने की एक छोटी सी कोशिश मैंने

जरूर की है। 1990 से 1996 तक का समय शायद सबसे महत्त्वपूर्ण समय था रूस और बाकी दुनिया के लिए, जिसे मैंने अपनी दृष्टि से देखा अनुभव किया और समझा उसे उसी तरह से आपको दिखाना चाहती हूं। इस पुस्तक के सभी वर्णन, घटनाएं और वक्तव्य पूर्णत: मेरे निजी अनुभवों और विचारों पर आधारित हैं। उस समय के परीलोक को अपनी दृष्टि से आपको दिखाने का एक प्रयास मात्र है यह पुस्तक, जिसका एक-एक शब्द मैंने अनुभूति की स्याही में अपनी स्मृति की कलम को डुबो-डुबोकर लिखने का प्रयास किया है। आइये देखिये उस समय का रूस मेरी लेखनी की नजर से।

शिखा वार्ष्णेय

आभार

इस पुस्तक की प्रेरणा के मूल में वे सभी लोग हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस दौरान इस सफ़र में मेरे साथी रहे हैं। मैं कृतज्ञ हूं उन सभी रूसी साहित्यकारों और विद्वानों का जिनकी रचनाओं ने मेरे मन-मस्तिष्क पर जगह बनाई और उस देश के निवासियों और जन-जीवन को बेहतर समझने में मेरी मदद की।

मैं आभारी हूं मेरे परिवार और अंतरजाल की दुनिया के उन सभी साथियों का जिन्होंने मुझे निरंतर लिखते रहने के लिए प्रोत्साहित किया और आज उनके सहयोग से मेरी स्मृतियों ने इस पुस्तक का रूप लिया।

बहुत धन्यवाद डॉ. विवेकी राय एवं दिव्या माथुर जी का जिन्होंने अपने कीमती समय में से वक्त निकालकर इस पुस्तक का अवलोकन किया और अपनी प्रतिक्रिया दी।

अंत में आभार लंदन के भारतीय उच्चायोग का जिसने इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ अनुदान प्रदान कर मेरा सहयोग किया।

विषय सूची

दोपहर और नई सुबह	6
चाय दे दे मेरी मां	8
वो कौन थी	10
टर्निंग पॉइंट	15
स्टेशन की बेंच से एम एस यू की बेंच तक	22
टूटते देश में बनता भविष्य	25
कुछ मस्ती कुछ तफरीह	36
मॉस्को हर दिल के करीब	43
हिंद से दूर हिंदी	51
कीवस्काया रूस का प्राचीनतम नगर	54
टॉल्सटॉय गोर्की और यह नन्हा दिमाग	59
स्वर्ण अक्षर और सुनहरे अनुभव	64

दोपहर और नई सुबह

पहाड़ों की गर्मियों की सुहानी दोपहर थी। सभी अपने-अपने कमरों में अपने आप में मशगूल थे तभी फोन की घंटी घनघनाई। उस समय फोन इतने आम नहीं थे कि उस पर गप्पे मारीं जाती हों। काम के ही फोन आया करते थे। तो सभी के कान उधर लग ही जाते थे उत्सुकतावश। फोन पापा ने उठाया और हैलो करने के बाद-हां हूं अच्छा ये 3-4 शब्द बोलकर रख दिया था। फिर दो मिनट तक यूं ही शांत फोन को हम घूरते रहे। सभी निकल आये थे कमरों से यह जानने कि किसका फोन था। पापा यूं ही फोन को देखते हुए बोले थे इसका दाखिला हो गया है रूस के लिए और फिर यूं ही चले गए अपने कमरे में। उस कमरे से आई आवाजों से पता लगा कि दिल्ली वाले चाचा जी का फोन था। उन्होंने ही यह सूचना दी थी और कहा था कि जल्द से जल्द पासपोर्ट बनवाकर दिल्ली आ जाएं बाकी का काम वह संभाल लेंगे।

उस पूरे दिन फिर कोई किसी से नहीं बोला। उस फोन से जैसे कोई बम गिरा था हिरोशिमा और नागासाकी पर। सब शांत हो गया था। दूसरे दिन चाय के वक्त फिर पापा ने ही बात छेड़ी-'अब बड़ी हो गई है चिंता की क्या बात है। बुलाने वाले ही सारी व्यवस्था करेंगे और अकेली थोड़े न जा रही है और 30 बच्चे हैं। सब इसी की उम्र के होंगे।' पापा बोले जा रहे थे। कहने को तो यह सब वह मम्मी से कह रहे थे जो नाते-रिश्तेदारों की बातों से परेशान थीं- 'एक बार लड़की को विदेश भेजा फिर वो तो वहीं की होकर रह जायेगी। भाभी जी आप तो सोच लेना कि विदा कर दिया बेटी को।' पापा कह रहे थे कि क्या हुआ समझदार है, हम भी तो उसकी खुशी ही चाहते हैं, न आखिर में। इतनी ठण्ड होती है वहां। उससे बचने के लिए वोदका-शोदका भी ले लेगी तो उसमें कोई बुराई नहीं। भौगोलिक स्थिति के हिसाब से ही खानपान हुआ करता है। पर मैं जानती थी मम्मी के बहाने वो खुद को समझा रहे थे। मैंने उसी वक्त एक वादा अपने आप से किया कि चाहे जो भी हो जाये पर इन दोनों कामों से दूर रखूंगी अपने आपको। वहां मैं सिर्फ पढ़ने जा रही हूं और लौटते समय मेरे साथ सिर्फ मेरी डिग्री होगी और कुछ नहीं। अपने पापा का विश्वास नहीं टूटने दूंगी मैं। फिर 2-3 दिन पापा लगे रहे औपचारिकताओं में। बाकी घर को जैसे सांप सूंघ गया था। मम्मी चिंता में मौन थीं और मैं भ्रम में। बारहवीं पास करने के बाद स्कॉलरशिप का इम्तिहान